आचार्य वराहमिहिर

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी,

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

ज्योतिषशास्त्र के भुवन दीपक सदृश आचार्य वराहमिहिर ने ज्योतिषशास्त्र के सिद्धान्त, संहिता तथा होरा स्कन्धों पर प्रामाणिक तथा सांगोपांग ग्रन्थों की रचना की। वे भारतीय ज्योतिष ज्योतिष के प्रकाश स्तम्भ हैं। उन्होंने ज्योतिष के अतीत पर प्रकाश डाला अन्यथा पैतामह तथा वासिष्ठ जैसे अत्यन्त प्राचीन सिद्धान्त जो भारत में ज्योतिष के आविर्भाव की कहानी कहते हैं, विस्मृति के गर्त में चले जाते और विश्व के सन्दर्भ में ज्योतिर्विज्ञान के जनक के रूप में भारत की पहचान तिरोहित हो जाती। उन्होंने गणित की प्रक्रिया को सरल तथा अधिक बोधगम्य बनाया एवं अनावश्यक बारीकियों को, जिनके न रहने से ग्रहगति स्थिति में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता, प्रकिया से अलग किया। उसके स्थान पर सरलतर प्रकिया देकर भविष्य के लिए दैवज्ञों तथा गणकों का मार्ग प्रशस्त किया। यद्यपि आधुनिक ज्योतिर्विज्ञान के आधारस्तम्भ के रूप में आचार्य आर्यभट का महत्त्व भी वराहमिहिर के समान ही है-वे वराहमिहिर से किंचित् पूर्व के भी हैं, किन्तु उनका क्षेत्र गणित तथा सिद्धान्त ज्योतिष तक ही सीमित रहा जबकि वराहमिहिर ने तीनों स्कन्धों पर अपने विशाल सर्वांगपूर्ण ग्रन्थों की रचना करके अपनी मेधा की आर्ष विशालता का परिचय दिया। ज्योतिषशास्त्र के क्षेत्र में उनका अवदान, व्याकरण के क्षेत्र में महामति पाणिनि तथा अर्थशास्त्र के क्षेत्र में आचार्य कौटिल्य के समक्ष हैं। वे इतिहास के ऐसे मोड़ पर आये जब पिछली अनेक सदियों से विस्मृत, विछिन्न तथा विभ्रान्त ज्योतिषशास्त्र का उद्धार अपेक्षित था।

वराहमिहिर ने अपने विषय में अपने ग्रन्थों में कुछ विशेष नहीं लिखा। अतः आभ्यन्तर तथा आनुषंगिक प्रमाणों के आधार पर ही उनका जीवनवृत्त तथा काल उभरता है। अपने जातकग्रन्थ बृहज्जातक में उन्होंने अपने पिता तथा जन्मस्थान के बारे में स्पष्ट संकेत दिया है-

आदित्यदासतनयस्तदवाप्तबोधः कापित्थिके सवितृलब्धवरप्रसादः।

आवन्तिको मुनिमतान्यवलोक्य सम्यग्घोरां वराहमिहिरो रुचिरां चकार।।

E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi

अर्थात् अवन्ति (उज्जयिनी) के पास कापित्थक नामक ग्राम में रहने वाले आदित्यदास के पुत्र तथा उन्हीं से पढ़े हुए, सूर्य से वर को पाये हुए, श्री वराहमिहिरजी ने अनेक मुनियों के मतों को देख तथा विचार करके इस उत्तम होराशास्त्र को बनाया।

इससे स्पष्ट है कि वे आदित्यदास मे पुत्र थे तथा उन्हीं से उन्होंने ज्योतिष का प्रारम्भिक ज्ञान भी प्राप्त किया था। वे अवन्तिका क्षेत्र के निवासी तथा कापित्थक ग्राम उनकी कर्मस्थली थी।

आचार्य वराहमिहिर सूर्योपासक थे और सूरय ही उनके इष्टदेव थे। वराहमिहिर जब बच्चे थे तब इनके पिता ने इनका मिहिर जिसका अर्थ सूर्य है, इसलिए रखा था कि ये सूर्य की कृपा से पैदा हुए थे।मिहिर जब बालक थे तभी एक दिन अपने पिता आदित्यदास के साथ राजा विक्रमादित्य के दरबार में गए। वहाँ राजा को देखते ही मिहिर बोल उठे कि 'शूकरो अस्य हन्ता' अर्थात् , इसे सूअर मार डालेगा। आदित्यदास ने उस समय इनको रोकने का पूर्ण प्रयत्न किया तथापि राजा बच्चे की यह वाणी सुन चुका था। कालान्तर में राजा की मृत्यु सूकर से होने के कारण मिहिर को वराह उपाधि मिल गई।

आचार्य वराहमिहिर के काल के विषय में ज्यादा विप्रतिपति नहीं है। विद्वानों का अभिमित है कि उनका काल शक 427 से शक 509 के मध्य का है।

वराहमिहिर की रचनाएं-

प्रमुख रचनाएं- 1. पञ्चसिद्धान्तिका, 2. बृहज्जातक, 3. बृहत्संहिता

गौण रचनाएं- 1. लघुजातक, 2. जातकार्णव, 3. समास संहिता, 4. योग यात्रा, 5. विवाह पटल

कुछ अन्य ग्रन्थ जैसे 'विवाह खण्ड', पंचपक्षी, ग्रहणमण्डलफलम् भी वराहमिहिर के ग्रन्थ होने में सन्देह है।

वराहमिहिर ने अपने इन ग्रन्थों के पौर्वापर्य का संकेत भी इन ग्रन्थों में दिया है। अपनी 'बृहत्संहिता' के पहिले ही अध्याय में उन्होंने लिखा है-

वक्रानुवक्रास्तमयोदयाद्यास्ताराग्रहाणां करणे मयोक्ताः।

होरागतं विस्तरतश्च जन्मयात्राविवाहैः सह पूर्वमुक्तम्।।

E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi

अर्थात् मैंने करण ग्रन्थ (पञ्चसिद्धान्तिका) में तारा ग्रहों (भौमादि पञ्च ग्रहों) के वक्र, मार्ग, उदय आदि वर्णन किए हैं तथा होरा (बृहज्जातक, बृहद्विवाहपटल आदि) ग्रन्थों में जन्म, यात्रा, विवाह आदि विस्तारपूर्वक वर्णन किए हैं।

इससे स्पष्ट है कि बृहत्संहिता से पूर्व उनके ग्रन्थ 'पञ्चसिद्धान्तिका', 'बृहज्जातक', 'योगयात्रा' और 'विवाहपटल' लिखे जा चुके थे।

ग्रन्थों में प्रतिपादित विषय-

बृहज्जातक जैसा कि उसके नाम से ही स्पष्ट है, उसमें व्यक्तियों के जन्म के आधार पर जो ग्रह स्थिति होती है उसके फल का निरूपण है। इसी को 'जातक' या होराशास्त्र कहते हैं। इसमें आचार्य ने सम्बन्धित सभी विषयों का समावेश किया है जैसे राशि प्रभेद, अरिष्ट, आयुर्दाय, दशान्तर्दशा, अष्टकवर्ग, कर्माजीव, राजयोग, नाभसयोग, ऋक्षशील, राशिशील, भावफल आश्रमयोग आदि। आचार्य की विशेषता यह है कि उन्होंने इस ग्रन्थ में पूर्वाचार्यों के मतों की समीक्षा की है तथा अपना निर्भ्रान्त मत स्थापित किया है। आचार्य ने बृहज्जातक में आयुर्दाय, निषेक, अरिष्ट, स्त्रीजातक तथा नष्टजातक से सम्बन्धित कुछ बातें लिखी हैं जो फलित ज्योतिष के लिए बहुत उपयोगी है। दशापद्धति को छोड़कर सम्पूर्ण ग्रन्थ का आज भी विद्वानों में बहुत समादर है।

बृहत्संहिता जीवनोपयोगी व्यावहारिक ज्ञान का महासागर है।वराहमिहिर के अलौकिक पाण्डित्य, विस्तृत ज्ञान तथा विशाल दृष्टिकोण के पूर्ण परिचायक होने से निश्चितरूपेण एक अद्भुत ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ ज्ञान-विज्ञान की सबसे अधिक श्रीवृद्धि करने वाला तथा लोक का सर्वाधिक उपकार करने वाला ग्रन्थ है। यह वस्तुतः प्राचीन भारत का ज्ञान-विज्ञान का एक विश्वकोष ही है जिसमें उस युग की नाना विद्याओं का विशाल समुच्चय एकत्र किया है। इसमें कुल 107 अध्याय हैं। इनमें सूर्यादि ग्रहों के चार, धूमकेतुओं के लक्षण तथा प्रभाव, सप्तर्षियों के उदयादि, नक्षत्रव्यूह,सांवत्सरिक फल, पर्जन्य गर्भ लक्षण, भूमि में जल ज्ञात करने की विधि, भूकम्प, अर्घकाण्ड, वास्तु, प्रतिमालक्षण, उत्पात, वृक्षायुर्वेद, विभिन्न पशु-पक्षियों के लक्षण, अंगविद्या, शकुन आदि अनेक लोकोपयोगी विषयों का समावेश हैं। इसके अतिरिक्त तालाब खुदवाना, वृक्ष लगवाना, मूर्ति निर्माण, गृहनिर्माण आदि का अनेक अध्यायों में वर्णन है। ग्रन्थ में हाथी,

E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi

घोड़े, मनुष्य, स्त्रियों आदि के विशिष्ट चिह्नों का वर्णन है। आचार्य ने बृहत्संहिता में साठ प्रकार के छन्दों का सफल सार्थक प्रयोग किया है। इसकी लोकप्रियता के कारण ततःप्राचीन संहिताओं का लोप ही हो गया।

आचार्य ने यदि पञ्चसिद्धान्तिका नहीं लिखी होती तो भारत के प्राचीन सिद्धान्त विस्मृति के गर्त में खो जाते और हमारा ज्योतिष का वैश्विक ज्ञान उधार लिया हुआ माना जाने लगता। अतः आचार्य ने पञ्चसिद्धान्तिका लिखकर न केवल ज्योतिषशास्त्र की अपितु भारत की सांस्कृतिक अस्मिता की भी सुरक्षा की। वराहमिहिर की पञ्चसिद्धान्तिका में ज्योतिष के सिद्धान्त स्कन्ध से सम्बन्धित पाँच सिद्धान्त हैं। सिद्धान्त, गणित की विशिष्ट पद्धति है जिसके द्वारा किसी भी दिन के सूर्य तथा चन्द्रमा के मध्यम तथा स्पष्ट मान, तिथि, नक्षत्र, दिनमान, संक्रान्तियाँ, ग्रहों के मान, अस्तोदय, ग्रहण नक्षत्रयुति इत्यादि निकाले जाते हैं। वैदिककाल से लेकर आचार्य वराहमिहिर तक ऐसे पाँच सिद्धान्त प्रचलित थे जो कालक्रम से इस प्रकार हैं-

1. पैतामह सिद्धान्त
2. वासिष्ठ सिद्धान्त
3. रोमक सिद्धान्त
4. पौलिश सिद्धान्त
5. सौर सिद्धान्त

इस सम्बन्ध में सूर्यारुण संवाद के रूप में यह सिद्धान्त परम्परा सुरक्षित है-

पैतामहं च सौरं च वासिष्ठं पौलिशं तथा।

रोमकं चेति गणितमं पञ्चकं परमाद्भुतम्।।

वेदैः सह समुद्भूतं वेदचक्षुः सनातनम्।

रहस्यं वेदमध्यस्थं स्मृतवान् यद् पितामहः।।

पैतामह सिद्धान्त भारतीय सिद्धान्त ज्योतिष का सबसे प्राचीन सिद्धान्त है। वराहमिहिर ने अपनी पञ्चसिद्धान्तिका के 12वें अध्याय में इसका निरूपण किया है। इस सिद्धान्त में मध्यमान के सूर्य और चन्द्र की गणना की गई है तथा तिथि, नक्षत्र, पर्व आदि की गणना भी मध्यमान से की गई है। पैतामह सिद्धान्त

E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi

से वासिष्ठ सिद्धान्त पर आने पर भारतीय ज्योतिष में बहुत बड़ा परिवर्तन होता है। जहाँ पैतामह सिद्धान्त में मध्यममान का गणित था और केवल सूर्य और चन्द्र से सम्बन्धित गणनाएं थीं, वहीं वासिष्ठ सिद्धान्त में आकर हम स्पष्ट मान के गणित पर पहुँचते हैं। किन्तु स्पष्ट मान का यह गणित, गणित पर उतना आश्रित नहीं है जितना कि वेध और छाया पर आधारित है।यही उसकी सबसे बड़ी विशेषता है। स्पष्ट सूर्य, दिनमान, लग्न इत्यादि निकालने के लिए 12 अंगुल के शंकु की छाया का प्रयोग किया गया है जो प्राचानकालीन ज्योतिर्गणित पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालता है। इस समय तक वर्षमान 365 सही ¼ दिन हो गया है, जो इस बात का प्रमाण है कि ज्योतिष वासिष्ठ सिद्धान्त तक आते-आते वैज्ञानिक धरातल पर प्रतिष्ठित हो रहा था। इसके अतिरिक्त अन्य ग्रहों के विषय में दीर्घकाल तक वेध लेकर इस सिद्धान्त में उनकी गतियों का निरूपण किया गया है तथा यह भी बताया गया है कि कितने अंतराल के बाद कौन सा ग्रह वक्री होता है, कब मार्गी होता है, और फिर कितने अंतराल कौन सा ग्रह वक्री होता है, कब मार्गी होता है, और फिर कितने अंतराल पर उसकी गति क्या रहती है, इत्यादि। इसके आधार पर सूर्य, चन्द्रमा के अतिरिक्त अन्य पंच ताराग्रहों के भी स्पष्ट मान व्यावहारिक प्रयोजन के लिए काफी शुद्ध निकाले जा सकते हैं। वराहमिहिर ने अपनी पञ्चसिद्धान्तिका का प्रारम्भ वस्तुतः रोमक सिद्धान्त से ही किया है जिसके सभी महत्त्वपूर्ण तत्त्व पहले अध्याय में ही हैं। पञ्चसिद्धान्तिका का तीसरा, पाँचवाँ, सातवाँ, छठा तथा अठारहवाँ पौलिश सिद्धान्त के लिए समर्पित है। आचार्य वराहमिहिर ने इस सिद्धान्त का अत्यन्त विस्तारपूर्वक प्रतिपादन किया है। पञ्चसिद्धान्तिका के 9, 10, 16 और 17 वें अध्यायों में आचार्य वराहमिहिर ने सौर सिद्धान्त के तत्त्वों की विस्तृत व्याख्या की है। अध्याय 9 में सौर सिद्धान्त के अनुसार सूर्यग्रहण के गणित का विवरण दिया है, अध्याय 10 में चन्द्रग्रहण, अध्याय 16 में ग्रहों के मध्यम मान का तथा अध्याय 17 में ग्रहों के स्पष्ट मान का विवरण उन्होंने दिया है। आचार्य वराहमिहिर सौर सिद्धान्त को को अत्यन्त परिपक्व सिद्धान्त मानते हैं। वस्तुतः भारतीय सिद्धान्त ज्योतिष में सूर्यसिद्धान्त के बाद ही पूर्ण वैज्ञानिकता आई और यही कारण था कि सूर्य सिद्धान्त के बाद यद्यपि प्राचीन सिद्धान्तों के नाम वही रहे किन्तु उनके सभी तत्त्व सूर्य सिद्धान्त के तुल्य हो गये। परवर्ती आचार्यों ने भी अलग-अलग नाम से अपने ग्रन्थ बनाये लेकिन उनके मूल तत्त्व तथा गणित की प्रक्रियाएं सूर्य सिद्धान्तसम्मत थीं या कि उनमें

E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi

अपनी युगीन आवश्यकताओं के अनुसार तथा अपने अनुभव के आधार पर उन्होंने कुछ संशोधन किया। सौर सिद्धान्त के आने पर भारतीय ज्योतिष में एक गुणात्मक परिवर्तन हुआ। जहाँ पहले वासिष्ठ, रोमक और पौलिश सिद्धान्तों में ग्रहों के स्पष्ट दीर्घकाल तक वेध लेने के पश्चात् निर्धारित किए जाते थे, वहीं अब ग्रहों के स्पष्ट पूरी तरह गणित की क्रिया पर आधृत हो गए और वेध का कार्य इन गणितीय को शुद्ध करने के लिए किया गया।

आचार्य आर्यभट तथा वराहमिहिर इसतिहास के ऐसे मोड़ पर आए जब यह शास्त्र विस्मरण के गर्त में डूब रहा था तथा विज्ञान एवं अन्धविश्वास मिलकर इस शास्त्र की अविश्वसनीयता को ही संकट में डाल रहे थे। आर्यभट ने गणित स्कन्ध को ठोस आधार प्रदान किया तथा आचार्य वराहमिहिर ने तीनों ही स्कन्धों को वैज्ञानिक आधार पर प्रतिष्ठित किया और पूर्व आचार्यों के अवदान को संग्रहीत कर सुरक्षित किया। संक्षेप में अनेक द्वारा प्रतिपादित विशिष्ट सिद्धान्त तथा प्रक्रियाएं इस प्रकार हैं-

1. तारागण के मध्य में पंचमहाभूतात्मक पृथिवी का गोला आकाश में उसी प्रकार स्थित है जिस प्रकार चारों ओर से चुम्बक लगे घेरे में लोह-

   पंचमहाभूतमयस्तारागणे महीगोलः।

   खेऽयस्कान्तस्थो लोह इवावस्थितो वृत्तः।।

2. पार्थिव तत्त्व पृथिवी की तरफ ही आता है- क्षिप्तमपि क्षितिमुपैति गुरुः किञ्चित्।
3. चन्द्रमा के ऊपर क्रमशः बुध, शुक्र, सूर्य, मंगल, गुरु, शनि हैं तथा उनके ऊपर नक्षत्रगण, ये सभी पूर्व की ओर जानेवाले तथा समान गति के हैं। सभी ग्रह अपनी कक्षा में विचरण करते हैं-

   चन्द्रादूर्ध्वं बुधसितरविकुजजीवार्कजास्ततो भानि।

   प्राग्गतयतुल्यजवा ग्रहास्तु सर्वे स्वमण्डलगाः।।

4. वार प्रवृत्ति अनिश्चित होने से उन्होंने तिथि को प्रामाणिक माना।
5. ज्योतिर्गणित की प्रक्रिया को सरल किया।

E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi

6. जातक के क्षेत्र में योगों की उपपत्ति यथास्थान दी। पूर्वाचार्यों-मयासुर, यवनाचार्य, सत्याचार्य आदि के मतों की समीक्षा की।
7. सिद्धान्तों को व्यावहारिक धरातल पर परीक्षण कर अपने मत स्थापित किए।
8. सूर्यग्रहण से सम्बन्धित अन्धविश्वासों का निराकरण किया।

आचार्य वराहमिहिर को भारतीय त्रिस्कन्ध ज्योतिषशास्त्र का पितामह कहा जाता है। उसका कारण यह है कि इनसे पूर्व या पश्चात् जितने भी आचार्य हुए वे सभी प्रायः ज्योतिष के किसी एक पक्ष को लेकर ही विचार करते रहे, किन्तु ये प्रथम ऐसे आचार्य हैं, जिन्होंने ज्योतिषशास्त्र की प्रायः सभी विधाओं में अपनी सम्मति प्रकट की है। आचार्य वराहमिहिर भारतीय ज्योतिषशास्त्र के इतिहास में एक बहुविज्ञ तथा बहुश्रुत आचार्य के रूप में हमारे सामने आते हैं। आचार्य के मौलिक सिद्धान्त विद्वतापूर्ण एवं अतिगम्भीर हैं। प्राचीनकाल से लेकर अद्यावधिपर्यन्त एकमात्र आचार्य वराहमिहिर ही त्रिस्कन्ध ज्योतिषी हैं। वराहमिहिर से परवर्ती आचार्यों ने बृहत्संहिता एवं बृहज्जातक को आधार बनाकर अपने ग्रन्थों का प्रणयन किया है। अतः भारतीय ज्योतिष एवं ज्ञान-विज्ञान का विशाल क्षेत्र कहीं-न-कहीं आचार्य वराहमिहिर का अवश्यमेव ऋणी है।

E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi